वर्षम् - ०१ अङ्कः - ०१ शोधज्योतिः
जनवरी-दिसम्बर, २०१९ ISSN-2350-0700

गर्भाधान संस्कार

प्रो. कश्यप एम्. त्रिवेदी*

भारतीय संस्कृति में सोलह संस्कारों का महत्त्व है। वर्तमान समय में विवाह आदि संस्कार गतानुगतिक हैं, उनमें किसी भी तरह की समझदारी नहीं है। केवल सामाजिक रीतिरिवाजों को संभालने हेतु देखाव मात्र की विधि की जाती है। जीवन को श्रेष्ठ बनानेवाला, श्रेष्ठ आत्मा को पृथ्वी पर अवतरित करानेवाला, राष्ट्र की धुरा संभालनेवाले संतानों के लिए गर्भाधान संस्कार है। लेकिन उनकी संपूर्ण अवहेलना की जाती है। केवल पशुवत् कामसुख भोगने से संतानों को उत्पन्न किया जाता है। जो अनचाहे समझदारी के बिना पैदा हुए संतान बीजरूप बन जाती है। इसीलिए उनके पालन-पोषण में भी ध्यान नहीं रखा जाता है। हमारे शास्त्रों में श्रेष्ठ संतान की प्राप्ति के लिए गर्भाधान संस्कार है। दंपति को संतान प्राप्ति से पूर्व जो संस्कार किये जाते हैं उनको गर्भाधान संस्कार कहते हैं। जिस तरह कृषक क्षेत्र और बीज को तैयार करता है। क्षेत्र और बीजकी पसंदगी करता है। क्षेत्र को स्वच्छ करता है, जरुरी पोषक द्रव्य से परिमार्जित करता है। बीज की पसंदगी करता है, उनको स्वच्छ करता है, गोमय आदि का संपुट देने के बाद बीज बोता है। **उसी तरह दंपति को श्रेष्ठ संतान के लिए क्षेत्ररूप स्त्री को और बीजरूप** पति को पूर्व तैयारी करनी जरूरी है। जो गर्भाधान संस्कार है वे यहाँ दर्शाने का उपक्रम है।

तैत्तिरीय उपनिषद् में अभ्यास के बाद स्नातक को उपदेश में गुरुजी के द्वारा "**प्रजातन्तुम् मा व्यवच्छेत्सीः**[१]" इस प्रकार आज्ञा दी गई है। ब्रह्मचर्याश्रम के बाद गृहस्थाश्रम की आज्ञा है। उसमें "प्रजातन्तु....। की आज्ञा है। अर्थात् भार्या का स्वीकार भोग के लिए नहीं अपितु संतान प्राप्ति के लिए है, प्रजा सर्जन के लिए है। यह प्रजा राष्ट्र को धारण करने में समर्थ तथा संस्कृति का वहन करने में समर्थ होनी चाहिये। निर्बल, रोगीष्ट, डरपोक नहीं। अतः कोई कवि ने कहा है कि;

" જનની જણ તો ભક્ત જણ, કાં દાતો કાં શૂર
નહિ તો રહેજે વાંઝણી મત ગુમાવીશ નૂર "

---

* संस्कृतविभागाध्यक्षः, श्यामजीकृष्णवर्मा कच्छविश्वविद्यालयः, भुज

१ तैत्तरीय उपनिषद् - अनुवाक् - ११

अर्थात् स्त्री को कवि कहता है कि भक्त, दानवीर और शूरवीर संतान को जन्म देना अन्यथा अपना नूर मत गँवाना। श्रीमद् भगवद्गीता में भगवान ने अपनी विभूति में प्रजोत्पदनार्थ मैं कामदेव हूँ ऐसा कहा है।[२]

प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः

श्रेष्ठ संतान प्राप्त करने हेतु ही गर्भाधान संस्कार विधि है। उसमें गर्भ के आधान के पहले दम्पती को पूर्वतैयारी करनी है। तप करना है। श्रीमद्भागवत में दक्ष प्रजापति ने तप से ही सृष्टि का सर्जन किया है।[३] ब्रह्माजी ने भी भगवान नारायण की आज्ञा से एक सहस्त्र वर्ष तप के बाद सृष्टि का सर्जन किया। अतः सृष्टि सर्जन के लिए तप अनिवार्य है। तैत्तिरीय उपनिषद् में स्वाध्याय, प्रवचन, अतिथि सेवा आदि आवश्यक कर्तव्य के उपदेश में प्रजा उत्पत्ति, प्रपौत्र, दोहित्र के साथ स्वाध्याय - प्रवचन भी कहा है।

"प्रजा च स्वाध्यायप्रवचने च।
प्रजनश्च स्वाध्यायप्रवचने च।
प्रजाति स्वाध्यायप्रवचनेश्च।"[४]

मनुष्यों को लग्न आदि कार्यों के साथ-साथ स्वाध्याय-प्रवचन, वेदाभ्यास आदि अनुष्ठान और नित्यकर्म करने चाहिए।

पात्र चयन

भारतीय मनीषियों की दृष्टि से लग्न मात्र कामसुख के लिए नहीं हैं। श्रेष्ठ संतान को जन्म देने के लिए है। अतः पात्र चयन के मापदण्ड दिये हैं। जो कन्या के साथ लग्न करने का प्रस्ताव हो वह सगोत्र नहीं हो, मातृपक्ष में भी कम से कम पाँच पीढी के बाद की होनी चाहिए। उनके वंश में आनुवंशिक रोग नहीं होना चाहिए। मानसिक - शारीरिक रूप से स्वस्थ होनी चाहिए।

असपिण्डा तथा मातुरसगोत्रा च या पितुः।
सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने॥[५]

---

[२] श्रीमद् भगवद्गीता १०.२८

[३] अथ मेऽभिहितो देवस्तपोऽतप्यत दारुणम्।
नव विश्वसृजो युष्मान् येनादावसृजद्विभुः॥ - श्रीमद् भागवत् ६.२.५०

[४] तैत्तरीय उपनिषद् - ९.९. पृ. ४४

[५] मनुस्मृति - ३.१५

अरोगिणीं भ्रातृमतीमसमानर्षगोत्रजाम्।
पञ्चमात् सप्तमादूर्ध्वं मातृतः पितृतस्तस्थाम्॥[६]
...। स्फीतादपि न संचारिरोगषसमन्विताम्॥

याज्ञवल्क्य ऋषि कन्या के पिता को भी यह सलाह देते हैं कि रोगीष्ट, मानसिक रूप से हीन, हीनवीर्य, राजद्रोही, नास्तिक वृत्तिवाला, जिनके वंश में केवल पुत्रियों का ही जन्म होता हो, आनुवंशिक रोग से ग्रस्त, वेदाचार हीन को अपनी कन्या न दें।

एतैरेव गुणैर्युक्तः सवर्णः श्रोत्रियो वरः।
यत्नात्परीक्षितञ्ज् पुंस्त्वे युवा धीमाम् जनप्रियः॥[७] **याज्ञ. १.५५**

नारद स्मृति में भी बात कही है।

अपत्यार्थं स्त्रियः सृष्टः स्त्री क्षेत्रं बेजिनो नराः।
क्षेत्रं बीजवते देयं नाबीजी क्षेत्रमर्हति॥ - नारदस्मृति

लग्नविधि के कन्यादान संकल्प में..."**अस्या कन्यायाः अनेन वरेण धर्मप्रजया उभयोर्वंशवृद्धयर्थं....**।[८] अर्थात् धार्मिक प्रजा उत्पन्न करने हेतु यह कन्या का दान करता हूँ। यहाँ विधि में कन्या के पिता वर को बताते हैं कि कामप्राप्ति और प्रजाप्राप्ति के लिए यह कन्या आपको देता हूँ।" ....**कन्यादान कल्पोक्तद्विगुणप्राप्तिकामो वा प्रजोत्पादनार्थं भार्यत्वेन तुभ्यमहं सम्प्रददे॥**[९]

रजोदर्शन शान्ति

मनुष्यों के ज्ञाताज्ञात कायिक, वाचिक और मानसिक अशुभ कर्मों की शान्ति के लिए, परलोक आदि में फल देने रोकने हेतु जो कर्म किये जाते हैं उन्हें प्रायश्चित कर्म कहते हैं रजोदर्शन शान्ति ऐसा प्रायश्चित कर्म है। उनके बाद ही गर्भधारण का अधिकार प्राप्त होता है। उसमें सुज्ञ पुरुषों ने भुवनेश्वरी शान्ति की बात की है। नारदस्मृति में निन्द्य नक्षत्र, तिथि, वार, स्थान और वस्त्र में स्त्रीओं को प्रथम रजोदर्शन हो तो वह अशुभ माना जाता है। अतः शान्ति अर्थेग्रहयज्ञपूर्वक रजोदर्शन शान्ति करने की है।

---

[६] याज्ञवल्क्य स्मृति। ९.५३-५४

[७] वही ९.५५

[८] नैमित्तिक कर्मप्रकाश - पृ.२९१, संपादक : पीताम्बर भट्ट; प्रकाशन आनंदाश्रम, बिलखा

[९] वही- पृ. ३६७

निन्द्यर्क्षतिथिवारेषु, यदि पष्पं प्रदृश्यते।
अशुभं चेद्रजः स्त्रीणां, निन्द्यस्थानं च वाससी।
तत्र शान्तिं प्रकुर्वीत, ग्रहयज्ञपुरःसरम्॥[१०]

रजोदर्शन के बाद ही गर्भाधान संस्कार करना चाहिए। रजोदर्शन के बिना स्त्री संग करने से पुरुष के शुक्र का मिथ्या व्यय होता है। महर्षि आश्वलायन कहते हैं -

प्राग्रजोदर्शनात्पत्नीं नेयाद्रत्वा पतत्यधः।
व्यर्थीकारेण शुक्रस्य, ब्रह्महत्योमवाप्नुयात्॥[११]

योगीश्वर याज्ञवल्क्य ऋतुकाले - अऋतुकाले भी भार्या गमन का स्वीकार करते हैं।

यथाकामी भवेद्वापि स्त्रीणां वरमनुस्मरन्।
स्वदारनिरतश्चैव स्त्रियो रक्ष्या यतः स्मृताः॥[१२]

शास्त्रों में ऋतुकाल और अऋतुकाल स्त्री संग के लिए बताये हैं। लेकिन उसमें विधिवाक्य ऋतुकाल ही है। ऋतुकाल में ही निंदित चार या पाँच दिन, श्राद्ध के दिन वर्ज्य है। पुत्र संतान के लिए युग्म और पुत्री संतान के लिए अयुग्म रात्रि को भार्यागमन करना चाहिए।

षोडशर्तुनिशाः स्त्रीणां तस्मिन्युग्मासु संविशेषत्।
ब्रह्मचार्येव पर्वाण्याद्याश्चतस्रस्तु वर्जयेत्॥[१३]

संतान उत्पत्ति के बाद पितृऋण से मुक्ति होती है। 'पाराशर संहिता" में कहा है कि ऋतुकाल के समय जो भार्यागमन नहीं करता है उन्हें भ्रूणहत्या का पाप लगता है।

ऋतुस्नातां तु यो भार्यां सन्निधौ नोपगच्छति।
घोरायां ब्रह्महत्यायां युज्यते नात्र संशयः॥[१४]

'भावप्रकाश" में बताया गया है कि ऋतुकाल में प्रजोत्पत्ति हेतु भार्यागमन के बाद दूसरी बार ऋतुकाल के बाद, अर्थात् गर्भधारण नहीं हुआ है उनकी जानकारी के बाद ही भार्यागमन करना

---

[१०] वही-पृ.१९१-१९३

[११] वही पृ. १९६

[१२] याज्ञवल्क्य स्मृति। १.८१

[१३] वही १.७९

[१४] नैमित्तिक कर्मप्रकाशन। पृ. २००

चाहिए। एक ही ऋतुकाल में दूसरी-तीसरी बार गमन नहीं करना चाहिए। क्योंकि गर्भद्वार के प्रथम चार दिन वर्ज्य इसलिए कहे हैं कि; उनमें संतान धारण नहीं होता है। यदि धारण हो तो गर्भपात हो जाता है या विकलांग वा अल्पायुषी संतान का जन्म होता है।

तत्र यश्चहितो गर्भो जायमानो न जीवति।
आहितो यस्तृतीयेऽह्नि स्वल्पायुर्विकलाङ्गकः॥[१५]

सुश्रुत भी कहते हैं कि ऋतुकाल के नियमों का पालन नहीं करने से विकलांग संतान का जन्म होता है।

दिवा स्वपत्न्याः स्वापशीलोऽञ्जनादन्धो र्दनाद्विकृतदृष्टिः
स्नानानुलेपनादुःखशीलस्तैलाभ्यङ्गात्कुष्ठी नखापकर्त नात्कुनखो प्रधानाश्चश्चलो
हसनाच्छायावदन्तौष्ठतालुजिह्नः प्रलापी चातिकथनादतिशब्दश्रवणा
द्वधिरोऽवलेखनात्खलतिर्मारुतायससेवनान्मत्तो गर्भो भवतीत्येवमेतान्परिहरेत्।[१६]

निंदित, तिथि, वार, समय में भी गमन करने से अयोग्य संतान का जन्म होता है। श्रीमद्भागवत् में संध्या के समय काम से पीडित दिति हठाग्रह से कश्यप ऋषि को अपनी कामवासना शान्त करने को कहती है। ऋषि के द्वारा बहुत समझाने पर भी दिति अपना आग्रह नहीं छोडती है। परिणाम स्वरुप हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु का जन्म होता है।

गर्भाधान से पहले रज-वीर्य होना अनिवार्य है। माता-पिता रोगीष्ट हो, अन्न आदि अशुद्ध होने से रज और शुक्र दोषयुक्त बनते हैं। ऐसे दोषित रज-शुक्र से रोगीष्ट संतान का ही जन्म होगा। जैसा कारण वैसा कार्य यह सांख्य सिद्धान्त शाश्वत है।

कामान्मिथुनसंयोगे शुद्धशोणितशुक्रजः।
गर्भः संजायते नार्याः स जातो बाल उच्यते॥
दम्पत्योः कुष्ठबाहुल्याद् दुष्टशोणितशुक्रयोः
यदपत्यं तयोर्जातं ज्ञेयं तदपि कुष्ठिमिति॥[१७]

'भावप्रकाश" कार कहते हैं कि ग्रहण किये हुए अन्न का सभी जगह से पाचन के बाद मल निकलता है। लेकिन सहस्त्रबार तप्त सुवर्ण में मल नहीं होता है उसी तरह बारंबार पक्व हुए शुक्ररूप में

---

[१५] भावप्रकाश - १०१४

[१६] सुश्रुत, शारीरस्थान, २.१२, पृ. ४५०

[१७] वही १.२५, २५, पृ.२४

मल नहीं रहता है।

स्वाग्निभिः पच्यमानेषु मलः षट्सु रसादिषु।
षट्सु धातुषु जायन्ते मलानि मुनयो जगुः॥
यथा सहस्रधाध्माते न मलं किल काञ्चने।
तथा रसे मुहुः पक्वे न मलं शुक्रतां गते॥[१८]

श्रेष्ठ संतान को उत्पन्न करनेवाला वीर्य स्फटिक के समान, प्रवाही, स्निग्ध, मधुर और मध जैसी सुगंधवाला होता है। अन्य आचार्यों के मत से वो तेल और मध जैसा होता है। आचार्य सुश्रुत 'शरीर स्थान" में कहते हैं कि दूषित रज-पुरुष सिद्ध, निरोगी संतान उत्पन्न करने में समर्थ नहीं है।

वातपित्तश्लेष्मकुणपग्रन्थिपूतिपूयक्षीणमूत्रपूरीषरेतसः प्रजोत्पादने न समर्थो भवन्ति।
आर्तवमपि त्रिभिर्दोषैः शोणितचतुर्थैः पृथग् द्वन्द्वैः समस्तैश्चोपसृष्टमबीजं भवति....।[१९]

बाद में आचार्य सुश्रुत शुक्र-रज शुद्ध बनाने के उपायों की चर्चा करते हैं।

गर्भोपनिषद् में अन्न का रस वीर्य-रज है। अतः 'जैसा अन्न वैसी प्रजा" अर्थात् माता-पिता को आरोग्यप्रद, सत्वशील, शुद्ध, पवित्र अन्न ग्रहण करना चाहिए। यह अन्न सात्विक गुण युक्त और पवित्र ही नहीं सन्मार्ग से, नीतीयुक्त मार्ग से प्राप्त किए धन से लिया होना चाहिए। मात्र अन्न ही नहीं, उनके साथ वायु, आकाश, जल और अग्नि भी स्वच्छ - शुद्ध होनी चाहिए। क्योंकि इन सबके संयोग से ही - पञ्चीकरण से ही वीर्य - रस और उनमें से सृष्टि की रचना होती है।

ॐ पञ्चसु वर्तमानं षडाश्रयं षड्गुणयोगयुक्तम्॥ तत्सत्पधातु त्रिमंल द्वियोनि चतुर्विधाहारमयं शरीरम्। भवति पञ्चात्मकमिति कस्मात्, पृथिव्यापस्तेणो वायुराकाशभि त्यस्मिन्पञ्चात्मके शरीरे॥ शुक्लो रक्तः कृष्णो धुम्रः पीतः कपिलः पाण्डुर इति॥ सप्तधातुकमिति कस्मात्, यथा देवदत्तस्य द्रव्यादिविषया जातन्ते॥ परस्परं सौम्यगुणत्वात्षडिवधो रसो रसाच्छेणितं शोणितान्मांसं मांसान्मेदो मेदसः स्त्रावा स्त्रान्वोऽस्थीभ्यो मज्जा मज्ज्ञः शुक्रं शुक्रशोणितसंयोगादावर्तते गर्भो द्वदिव्यवस्थानीति। हृदयेहृन्तराग्निः अग्नि स्थाने पित्तं पित्तस्थाने वायुः वायुस्थाने हृदयं प्राजापत्यात्क्रमात्॥२॥ ऋतुकाले संप्रयोगादेकरात्रषितं..।[२०]

---

[१८] 'सुश्रुत' शारीरस्थान - अ. २. २, ३ पृ. ४४६ - ४४७

[१९] गर्भोपनिषद् - १,२,३. प्रकाशक - मोतीलाल बनारसीदास, संपादक : पण्डितजगदीशशास्त्री, दिल्ली

[२०] भावप्रकाश १४. ६१

आहार - विहार

माता-पिता के आहार, विहार, चेष्टा और जैसे भाव से वो समागम करते हैं ऐसा संतान उत्पन्न होता है।

आहारचारचेष्टाभिर्यादशीभिः सभन्वितौ।
स्त्रीपुंसौ समुपेयातां तयोः पुत्रोऽपि तादृशः॥[२१]

'आयुर्वेद विकास" पत्रिका में डॉ. कमल प्रकाश अग्रवाल बताते हैं कि, "जो पुरुष चाहता हो कि मेरा पुत्र गौर वर्ण का हो, वेद का अध्ययन करनेवाला हो और पूरे सौ वर्ष तक जीवित रहे, उसको दूध-चावल की खीर बनाकर उसमें घी मिलाकर पत्नी के साथ खाना चाहिए। जो कपिलवर्ण, दो वेदों का अध्ययन करनेवाला और पूर्णायु पुत्र चाहता हो, उसको दही, चावल पकाकर पत्नी के साथ खाना चाहिए। जो श्यामवर्ण, रक्तनेत्र, वेदत्रयी का अध्ययन करनेवाला पूर्णायु पुत्र की इच्छा करता हो उसे जल में चावल पकाकर घी मिलाकर पत्नी के साथ खाना चाहिए। जो चाहता हो कि मेरी पूर्ण आयुवाली विदुषी कन्या हो, उसे तिल-चावल की खिचडी बनाकर पत्नी के साथ खाना चाहिए और जो चाहता हो कि मेरा पुत्र प्रसिद्ध पण्डित वेदवादियों की सभा में जानेवाला, सुन्दरवाणी बोलनेवाला, सम्पूर्ण वेदों का अध्ययन करनेवाला और पूर्ण आयुष्मान् हो, वह उड़द-चावल की खिचड़ी पकाकर उसमें उक्षन अथवा ऋषभ नामक बल वीर्य वर्धक औषधि मिलाकर पति-पत्नी दोनो भोजन करें।"[२२] दंपति जैसा अन्न ग्रहण करेंगे वैसा ही संतान होगी। तैत्तिरीय उपनिषद् में अन्न में से ही प्रजा की उत्पत्ति की बात कही है। **अन्नाद्वै प्रजाः। ...अन्नाद्भूतानि जायन्ते। जातान्यन्नेन वर्धन्ते। अद्यतेऽत्ति च भूतानि।**[२३]

मानसिक स्थिति

उत्तम संतान की इच्छा रखने वाले पुरुष को आनंदचित्त बनकर, स्वस्थ, स्नानादि से स्वच्छ, अंगलेप, पुष्प धारण किये हुए, वीर्यवर्धक पदार्थ का सेवन करके, स्वच्छ वस्त्र धारण करके, स्त्री में आसक्त रहकर उत्तम शय्या में स्त्री के पास जाना चाहिए।

स्नातश्चन्दनलिप्ताङ्ग सुगन्धिसुमनोऽतः।
भुक्तवृष्यः सुवसनः सुवेशः समलंकृतः॥

---

[२१] सुश्रुतसंहिता

[२२] डॉ. अग्रवाल कमल प्रकाश, "आयुर्वेद विकास" पत्रिका, वर्ष - २७, फरवरी - १९८८ पृ. ८८

[२३] तैत्तिरीय उपनिषद् - अनुवाक् - २

ताम्बूलवदनस्तस्यामनुरक्तोऽधिकरस्मरः।
पुत्रार्थी पुरुषो नारीमुपेयाच्छयने शुभे॥

भावप्रकाश विशेष में कहते हैं कि अधिक भोजन किया हो, धैर्य रहित हो, रोगीष्ट, क्षुधातुर, पीडायुक्त, तृषातुर, अन्य वेग से पीड़ित, बालक, बुद्ध को स्त्री संग नहीं करना चहिए।

अत्याशितोऽधृतिःक्षुद्वान् सव्यथाङ्गः पिपासितः।
बालो वृद्धोऽन्यवेगार्तस्त्यजेद्रोगी च मैथुनम्॥[२४]

अस्वस्थ चित्त से स्त्री संग करने से अन्ध, विकलांग, कुब्ज, वामन संतान का जन्म होता है। संग के समय वायुदोषित होने का जन्म होता है। ऐसा गर्भोपनिषद् में बताया है।

.....व्याकु लितमनसोऽन्धाः खञ्जाः कुब्जा वामना भवन्ति॥
अन्योन्यवायुपरिपीडितशुक्रद्वध्याद्विधा तनूः स्यात्ततो युग्माः प्रजायन्ते॥[२५]

श्री माताजी बताते हैं कि, "मिलन के समय माता-पिता की चेतनास्थिति की अवस्था अधिक महत्त्व की है। उनकी चेतना में निम्न स्तर के और वीभत्स विचार होने का प्रतिबिंब संतानो में होगा। अपूर्ण, विकलांग, अल्पबुद्धि, कुपोषण युक्त संतान गर्भाधान के समय की मातापिता की चेतना का परिणाम है। संतान के गर्भधारण की क्षण के समय मातापिता की चेतना की अवस्था अत्यंत महत्त्व है। यह अवस्था बालक के समग्र जीवन पर प्रभाव डालने वाली है।[२६] श्री माताजी विशेष में कहते हैं कि, "गर्भाधान से पहले अल्प से अल्प एक वर्ष से पहले भावी मातापिता को एक संतुलित और सुदृढ स्वास्थ्य निर्माण के प्रयत्न करना चाहिए। जिससे बालक को शारीरिक और मानसिक चेतना का योग्य आधार मिले। दम्पती को जीवन में प्रत्येक का सकारात्मक दृष्टिकोण, संतोष का भाव, आनंदित प्रकृति, मानव जात प्रति प्रेम, भगवान में श्रद्धा और प्रार्थनामय जीवन रखना चाहिए। यह सब बालक की गुणवत्ता को और अधिक आगे ले जाने में महत्त्वपूर्ण है। यह सब बात गर्भाधान संस्कार में है। अतः दंपति समझदारी से पूर्व तैयारी करने के बाद संतान की इच्छा से, स्वस्थ शरीर और स्वच्छ मन से प्रफुल्लित होकर समागम करते हैं तो अवश्य श्रेष्ठ संतान प्राप्त करते हैं। जैसा कर्म वैसा फल अवश्य मिलता है।

---

[२४] वही १.२३

[२५] गर्भोपनिषद्॥ ३॥

[२६] जोषी अर्केश, गर्भसंहिता, पृ. ५३-५४